अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ०६ भाद्रपद-आश्विन वि.सं.-२०७७ सितम्बर, २०२० पृष्ठ २८ RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X

हमन हैं इश्क मस्ताना

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।
रहे आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या।।

जो बिछुरे हैं पियारे से, भटकते दरबदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या।।

खलक सब नाम अपने को, बहुत कर शिर पटकता है।
हमन गुरु नाम सांचा है, हमन दुनिया से यारी क्या।।

न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या।।

कबीरा इश्क को माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन शिर बोझ भारी क्या।।

–कबीर



राजस्थान का आजादी के आंदोलन में योगदान : एक संवाद



दिनांक १३ अगस्त को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति एवं लोकतंत्र शाला स्कूल ऑफ डेमोक्रेसी का एक साझा अभियान सोशल मीडिया फेसबुक पर प्रारंभ हुआ। प्रथम चरण की शुरुआत व्याख्याता **डॉक्टर रेणुका पामेचा** ने की। इस सारगर्भित व्याख्यान का विषय था स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान की भूमिका। स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान के आंदोलन की विशेष भूमिका रही थी। उनका कहना था कि मैंने उस जमाने के सामंतवादी माहौल को देखा है। इसमें महिलाओं की भागीदारी महत्वपूर्ण थी।

राजस्थान की महिलाओं ने पर्दे के पीछे जिस ताकत का परिचय दिया है उसे आज इतिहास की किताबों ने भुला दिया है। और न ही इन महिलाओं का जिक्र राष्ट्रीय आंदोलन में किया गया है। आज इन सब को याद करने का अवसर है।

चंवरी टैक्स का जिक्र करते हुए बताया कि चंवरी टैक्स किसानों से जबरदस्ती वसूल किया जाता था। यहां की औरतों ने इसका जबरदस्त विरोध किया। इसके लिए वे महाराणा से मिलीं और चंवरी टैक्स वापस ले लिया गया था।

अपने वक्तव्य में उन्होंने स्वराज आंदोलन, रोलेट एक्ट, जलियांवाला बाग, महिला मंडल और युवा मंडल की भागीदारी से लेकर राजस्थान की महिलाओं की भागीदारी का नामजद विस्तृत वर्णन किया। असहयोग आंदोलन में बहुत सारी औरतें जेल भी गईं।

डॉक्टर अरुणा राय का कहना था कि हमें इन स्वतंत्रता सेनानियों को याद करने के मेले लगाने चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ियां इनके त्याग को जान सकें और याद रख सकें।

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष श्री रमेश थानवी ने सब का आभार प्रकट किया। ❑



दया बाई

❑

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै। गुरु बिन चौरासी मग जोवै।।
गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागै। गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै।।
गुरु ही दीन-दया गोसाईं। गुरु सरनै जो कोई जाई।।
पलटैं करैं काग सूं हंसा। मन को मेटत हैं सब संसा।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

-ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की गैर-व्यावसायिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ६ • भाद्रपद- अश्विन, वि.सं.२०७७ • सितम्बर, २०२०

क्र म

०५ पुण्य स्मरण
शैक्षिक नवाचारों के पुरोधा
हमारे अनिल भाई

०६ अपनी बात
बंधन से मुक्ति ही साक्षरता है

०८ आलेख
नई शिक्षा नीति - कितनी नई?

११ आलेख
विषमता के विरुद्ध बापू का
ट्रस्टीशिप का सिद्धांत

१४ शिक्षक दिवस के अवसर पर
अध्यापक की पाती अपने छात्रों के नाम

१६ आलेख
नई शिक्षा नीति के लक्ष्य

१९ स्मरणीय अध्यापक
ओजस्वी बुद्धिजीवी प्रोफेसर डी.डी. हर्ष

२१ जन्म शती पर
आवाज के अध्यात्म के धनी
हेमन्त कुमार

२३ किताबें
लोक नायक जयनारायण व्यास

२५ पिछला पन्ना
सीखना बरस दर बरस

आवरण साभार : स्व. हकू शाह

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक : रमेश थानवी | कार्यकारी संपादक : प्रेम गुप्ता | प्रबंध संपादक : दिलीप शर्मा

सद्भावना सहयोग : व्यक्तिगत ३५०/- रुपये संस्थागत ५००/- रुपये एक वर्ष के लिए | मैत्री समुदाय की सदस्यता ३०००/- रुपये

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
फोन : २७००५५६, २७०६७०६, २७०७६७७
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com



शैक्षिक नवाचारों के पुरोधा हमारे अनिल भाई

शिक्षक दिवस के अवसर पर निकलने वाला अनौचारिका का यह अंक श्री अनिल बोर्दिया की स्मृति को सादर निवेदित है। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में किया जाने वाला हर काम उनको ही निवेदित होता है; ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हकीकत यह है कि अनिल भाई का आखा जीवन शिक्षा को समर्पित रहा और शिक्षा का उनका सपना जन-जन को समर्पित रहा। उनका पूरा शैक्षिक चिंतन लोकोन्मुखी था और वे शिक्षा में सुधार कर हर काम जन जीवन को समृद्ध करने के लिए करते थे। समाज की जड़ता को तोड़ने के लिए करते थे। रूढ़ियों और अंधविश्वासों की जकड़न से मुक्ति पाने के लिए करते थे। देश के गरीब बच्चे, गांव में ठहरा हुआ लोक जीवन और घर-घर में पसरी हुई बीमारी उनकी चिंता के प्रमुख सरोकार थे। ऐसी स्थिति में जब हम यह कहते हैं कि राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति का हर काम अनिल भाई को निवेदित है तो हमारा आशय यह है कि समिति का पूरा समर्पण लोक जीवन के प्रति है और अनिल भाई के मार्फत हमारा हर काम लोक जीवन को समर्पित है।

अनिल भाई का देहावसान २ सितम्बर को हुआ था। लम्बी बीमारी ने उनको सचेत कर दिया था। आखिरी दिनों में उनके द्वारा किये गये काम और उनके साथ हुई बातचीत ऐसा संकेत बार-बार देती थी कि वे अब चादर समेट रहे हैं। बीमारी से वे थके जरूर थे मगर हारे नहीं थे, यह स्पष्ट दीखता था उनकी हर बातचीत में।

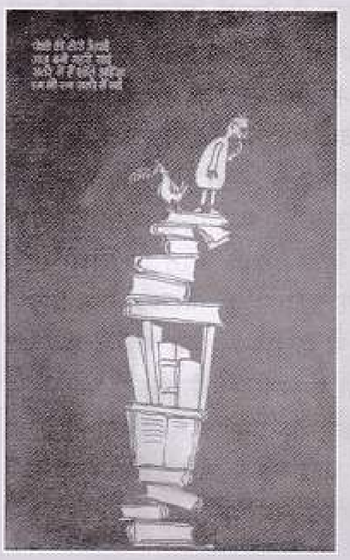
बरसों पहले वे राजस्थान में शिक्षा विभाग के निदेशक पद पर नियुक्त हुए थे। तभी उनकी बहुआयामी शैक्षिक प्रतिभा के दर्शन उनके द्वारा आकल्पित नाना नवाचारों में होने लगे थे। नए विचार हर दिन शिक्षा विभाग में नए काम को जन्म देने लगे थे। सृजनात्मक नवाचारों से पूरा शिक्षा विभाग अनुप्राणित हो गया था। एक तरफ सृजनात्मक शिक्षक साहित्यकारों की पुस्तकें छपने लगी थीं, दूसरी तरफ शिक्षक कलाकारों अथवा चित्र कला के शिक्षकों की सृजनात्मक पैंटिंग के साथ शिक्षा विभाग का सालाना कैलेण्डर छपने लगा था। शिविरा और नया शिक्षक में सैंकड़ों शिक्षक लिखने लगे थे। हर शिक्षक के लिए अपनी प्रतिभा को तराशने एवं प्रदर्शित करने के नए-नए अवसर मिल रहे थे।

उन्होंने शिविरा पत्रिका में निदेशक से सीधी बातचीत का एक कालम शुरू किया था और वे स्वयं शिक्षकों के प्रश्नों का उत्तर हर माह दिया करते थे। यहां से शुरू हुई उनकी शिक्षा यात्रा उनको भारत के शिक्षा सचिव के पद तक ले गई और वहां से पूरे विश्व में एक प्रखर शैक्षिक चिंतक के रूप में **एविसेना पुरस्कार** जैसे सर्वोच्च सम्मान तक भी। उनकी प्रखरता हर कार्यकर्ता को प्रोत्साहित करती थी और अनुप्राणित भी करती थी। उनकी प्रेरणा आज भी बनी हुई है और उसी प्रेरणा के साथ याद आते ही रहेंगे अनिल भाई। ❑

बंधन से मुक्ति ही साक्षरता है

मित्रो, यह महीना अंतरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस का है और शिक्षक दिवस का भी। जब हम शिक्षा और साक्षरता की बात करें और शिक्षकों को भूल जाएं, उनका जिक्र ही ना हो, यह कैसे हो सकता है? यह बात तो अधूरी ही होगी ना। हम कैसे भूल सकते हैं शिक्षा जगत के वी. वी. जॉन, मान्टेस्सरी, गिजुभाई बधेका, अनिल बोर्दिया एवं शिक्षाविद शिवरतन थानवी को। सुप्रसिद्ध शिक्षक शिवरतन जी ने अपनी पुस्तक **भारत में सुकरात** में इन सभी शिक्षकों के जीवन दर्शन और शिक्षा जगत में उनके योगदान के बारे में लिखा है।

जब साक्षरता का जिक्र किया जाता है तो मन कह उठता है कि साक्षरता व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को समाज से और राष्ट्र से जोड़कर विश्व कुटुंब की ओर ले जाती है। किसी भी राष्ट्र के लिए साक्षरता शिक्षा की प्रथम इकाई है। यह समाज की प्राथमिकता भी है।



आज देश में जिस तरह के हालात पैदा हुए हैं ऐसे में नौजवानों के लिए, किसान मजदूरों के लिए और देश के हर नागरिक के लिए स्वावलंबी होना बहुत जरूरी हो गया है। हालांकि देशभर में अपने अपने स्तर पर सभी राज्य और जिले इसका प्रयास कर रहे हैं फिर भी हर नागरिक को अपने अपने स्तर पर साक्षर और शिक्षित हो कर स्वावलंबी होना उसकी पहली जरूरत है।

साक्षरता का अर्थ कोरा अक्षर ज्ञान एवं गणित भर की जानकारी नहीं है। अपने जीवन में जागरण एवं चेतना का विस्तार साक्षरता है। यह एक सांस्कृतिक अनुभूति है जो हमें सोचनें, विचारनें एवं समझनें का हक देती है।

साक्षरता एक ऐसी सामाजिक जाग्रति है जिसका सीधा रिश्ता लोगों के जीवन से जुड़ा है। यह एक ऐसे समाज का निर्माण करती है जो समता में विश्वास रखता है। जहां सामाजिक विषमता, ईर्ष्या और द्वेष को कोई स्थान नहीं है।

हमारे देश में साक्षरता के सार्थक प्रयास हुए हैं। यहां प्रौढ़ शिक्षा, सतत शिक्षा एवं सर्व शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम भी चलाए गए हैं। लेकिन फिर भी विश्व की साक्षरता की दृष्टि से भारत में साक्षरता दर काफी कम है। लंबे अरसे तक चले साक्षरता के राष्ट्रीय अभियान के बावजूद भी देश में महिलाओं की साक्षरता दर पुरुषों की तुलना में काफी कम है। ग्रामीण क्षेत्र में तो शहरी क्षेत्र की अपेक्षा और भी कम है । आज देशभर में महिलाएं सशक्त हुई हैं। जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों से आगे बढ़ चुकी हैं लेकिन आज भी समाज ऐसी मानसिकता का शिकार है जिसमें महिलाएं और बच्चियां असुरक्षित एवं भयभीत महसूस करती हैं। आज भी हमें इन विषयों पर विचार करने और सशक्त कदम उठाने की जरूरत है।

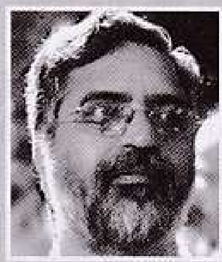
हमें देश में साक्षरता के स्तर को ऊंचा बढ़ाने के लिए दूसरे देशों यानी अंतरराष्ट्रीय साक्षरता पर भी एक नजर अवश्य ही डालनी चाहिए। उदाहरण के लिए हमें यह भी देखना है कि क्यूबा जैसे देश का अंतरराष्ट्रीय साक्षरता की दृष्टि से प्रथम स्थान है । यह मंजिल उसने किस तरह से हासिल की है। इसमें युवाओं की भागीदारी किस प्रकार रही? इस संदर्भ में अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जॉनाथन कोजोल का कहना है कि जब लाखों युवा इस काम में जुटे थे तो उनके हाथ में **एक पुस्तक थी । सोने के लिए बिस्तर था, एक लालटेन थी** और अपने काम को सार्थक तरीके से अंजाम देने का दृढ संकल्प और अपार उत्साह था। एक और खास बात थी कि वहां के लोगों में साक्षर होने के साथ खेतों में काम करने और उनके कामकाज में हाथ बटाने की दृढ इच्छा से भी निकला था यह युवा।

विश्व देशों में साक्षरता अभियान के सफल होने का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि जिस प्रकार वियतनाम में भी अगर यह साक्षरता अभियान सफल हुआ है तो इसके पीछे सबसे बड़ा कारण था कि यह अभियान वहां की मातृभाषा में चलाया गया। दूसरा महत्वपूर्ण कारण शिक्षार्थियों की भागीदारी भी उत्साह से भरी थी। वर्तमान में हमारे देश का साक्षरता अभियान काफी पीछे छूट गया है आज अक्षर और गणित की दुनिया शिक्षा के खिलाफ हो रही है।



हमारे सामने यहां कई ऐसे प्रश्न हैं जिन पर आज विचार करने की जरूरत है– क्या अब देश में साक्षरता की आवश्यकता नहीं रह गई है? ❑

प्रेम गुप्ता



प्रियदर्शन

❑

तीन दशक बाद नई शिक्षा नीति का ऐलान किया गया है। अब यह अपेक्षा स्वभाविक ही है कि ऐसी शिक्षा नीति लागू की जाए जिसमें नई चुनौतियों का सामना करने की ताकत हो। शिक्षाविद् प्रियदर्शन का प्रस्तुतआलेख हमारे सामने मातृभाषा, तकनीकी कुशलता जैसे कई प्रश्न खड़े करता है? उनकी चिंता है कि नई शिक्षा नीति इस दृष्टि से हमें निराश करती नजर आती है। नई तकनीक और डिजिटाइजेशन से कक्षाओं का ऑनलाइन होना भले ही कितना भी आकर्षक लगे लेकिन यह शिक्षा की अवधारणा को खंडित करता है। ❑ सं.

नई शिक्षा नीति : कितनी नई?

शिक्षा का उद्देश्य रटंत विद्या को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि किसी विषय की तार्किक समझ पैदा करना होता है– यह बिल्कुल सही बात अब जैसे एक जुमला बन गई है। जिसका शिक्षा की किसी भी परियोजना में सबसे पहले इस्तेमाल किया जाता है। केंद्र सरकार ने जो नई शिक्षा नीति प्रस्तावित की है, उसका सूत्र भी यही बताया जा रहा है। लेकिन यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है कि मौजूदा शिक्षा प्रणाली में नई नीति वे कौन से बदलाव लाने जा रही है जो रटंत विद्या की जगह वास्तविक समझ को स्थापित करे?

यहां याद किया जा सकता है कि एनसीईआरटी के निदेशक के तौर पर जाने-माने शिक्षाशास्त्री कृष्ण कुमार ने करीब डेढ़ दशक पहले यह समझने के लिए एक गंभीर उपक्रम किया था कि शिक्षा को समझ के माध्यम के रूप में विकसित करने के लिए क्या क्या बदलाव किए जाएं। इसके बाद एनसीईआरटी साहित्य, इतिहास और राजनीति शास्त्र की जो पाठ्य पुस्तकें लेकर आई, वे कई मायनों में समझ का रास्ता खोलने वाली साबित हो सकती थीं। लेकिन उन किताबों को लेकर विवाद हुए, उनमें बदलाव हुए और कुल मिलाकर शिक्षा का ढर्रा वही पुराना रहा। जाहिर है, पाठ्य पुस्तक, कक्षा और परीक्षा का जो दशकों से चला आ रहा ढांचा है, और जिसे अरसे तक लगभग वैश्विक स्वीकृति मिली हुई है, उसमें कोई बुनियादी बदलाव अपने-आप में टेढ़ी खीर है।

मगर जब तीन दशक बाद किसी नई शिक्षा नीति का ऐलान हो रहा हो तो यह अपेक्षा बहुत स्वाभाविक होती है कि उसमें शिक्षा और समझ को लेकर जो नई चुनौतियां हैं, उनके पार जाने का रास्ता खोजने की कोशिश होगी।

इस लिहाज से नई शिक्षा नीति निराश करती है। इसे देखते हुए स्वाभाविक तौर पर शक होता है कि इस नीति से शिक्षा पर विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों का कब्जा पहले से और मज़बूत होगा। शिक्षा खर्चीली होगी, निजी मुनाफे के उद्यम में बदलेगी और अंततः नए समाज और नया मनुष्य गढ़ने अपनी बुनियादी भूमिका छोड़कर पेशेवर उद्यमी पैदा करने का काम करेगी। नई तकनीक और डिजिटलाइजेशन का फायदा लेते हुए कक्षाओं को ऑनलाइन करने या स्कूलों और पुस्तकालयों को आपस में जोड़ने का ख़याल चाहे जितना भी आकर्षक हो, लेकिन वह फिलहाल शिक्षा में समता की अवधारणा को खंडित करता हुआ



❑

पुराने सरकारी विश्वविद्यालय अब खंडहरों में बदल रहे हैं। लेकिन एक दौर था जब वे अपनी सारी अराजकता के बावजूद बेलगाम किशोर शक्ति को ज़िम्मेदार नागरिकों में बदल कर समाज को लौटाते थे। आज उसकी जगह एक उद्धत उपभोक्ता समाज पैदा हो रहा है जो ऊपर से बहुत चमकीला, मगर अपने मूल में बहुत हिंसक और संवेदनहीन है।

मालूम होता है। निश्चय ही आधुनिक तकनीक और प्रौद्योगिकी से शिक्षा और शिक्षण को दूर नहीं रखा जा सकता, लेकिन इसे किसी नीतिगत चौखटे में एक मुहिम की तरह पेश करने से बेहतर शिक्षा संस्थानों में समय के साथ बदलते व्यावहारिक और प्रबंधकीय इंतजामों का हिस्सा भर माना जाता तो बेहतर होता।

फिलहाल तो नई तकनीक को शिक्षा में लाने के उत्साही हिमायती लोगों को इस बात का ख़याल आना चाहिए कि पुरानी तकनीक से हासिल ज़रूरी उपकरण ही अभी स्कूली शिक्षा का हिस्सा नहीं हो पाए हैं। ज़्यादातर स्कूलों में विज्ञान की प्रयोगशालाएं या तो हैं ही नहीं या फिर उनमें उपकरण इतने कम हैं कि बच्चे किसी प्रयोग को पूरा कर ही नहीं सकते। यही हाल स्कूलों के पुस्तकालयों का है। ये पुस्तकालय बंद अंधेरे कमरे होते हैं जहां न शिक्षक जाते हैं और न छात्रों को जाने की इजाज़त होती है।

दरअसल भारत में शिक्षा की जो दो सबसे बड़ी चुनौतियां हैं, उन पर यह शिक्षा नीति पूरी तरह ख़ामोश है। भारतीय शिक्षा भयानक विषमता की चपेट में है। बच्चों की आर्थिक हैसियत से उनका स्कूल तय होता है और स्कूल तय होते ही भविष्य तय हो जाता है। गरीब बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं। कुछ साल बाद या तो उनकी पढ़ाई छूट जाती है या फिर वह सरकारी या गैरसरकारी कंपनियों में चपरासी या दरबान जैसी भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। जो उनसे कुछ ऊपर होते हैं- निम्न मध्यवर्गीय घरों के बच्चे- उनको कुछ सस्ते निजी स्कूल मिल जाते हैं लेकिन उनका भविष्य भी चप्पल घिसते-घिसते किसी बहुत मामूली सी नौकरी तक जाकर सिमट जाता है। जो खाते-पीते घरों के बच्चे होते हैं, वे ठीक-ठाक निजी स्कूलों में दाखिला लेते हैं, ट्यूशन और कोचिंग की मदद से अच्छे नंबर लाते हैं और मेडिकल, इंजीनियरिंग की प्रतियोगिताएं पास कर अच्छी जगहों पर लग जाते हैं। जो इनसे भी ऊंचे घरों के होते हैं, उनके लिए और बेहतर और भव्य स्कूल होते हैं जहां से निकलकर वे सीधे सत्ता का हिस्सा बनते हैं। शिक्षा की यह गैरबराबरी वैसे तो पुरानी है मगर हाल के वर्षों में इसकी विडंबनाएं कुछ और तीखी हुई हैं। सरकारी स्कूलों का स्तर ३०-४० साल पहले इतना बुरा नहीं था, जितना आज है। दूसरी बात यह कि अंग्रेज़ी और हिंदी की शैक्षणिक हैसियत का अंतर पाटने की कोशिश में पूरा का पूरा हिंदी मध्यवर्ग अंग्रेज़ी स्कूलों की ओर मुड़ चुका है और पुराने हिंदी माध्यम स्कूल भी अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में बदल चुके हैं।

नई शिक्षा नीति में बेशक यह कहा गया है कि शुरुआती कक्षाओं की पढ़ाई मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषाओं में होनी चाहिए, लेकिन यह बात इतने ढुलमुल ढंग से कही गई है कि लगता ही नहीं कि इस पर क़रीने से अमल हो पाएगा। दरअसल शिक्षा और मातृभाषा के सवाल पर पिछले दिनों इतनी उलझी हुई राजनीति हो चुकी है कि इस मसले को हाथ लगाते ही जैसे कोई मवाद फूट पड़ता है। लेकिन इस प्रश्न से ठोस ढंग से टकराए बिना न शिक्षा का भला होने जा रहा है न भाषा का। इस लिहाज से इस

शिक्षा नीति में भाषा संबंधी दृष्टिकोण को लेकर इच्छा तो दिखती है, इरादा नहीं दिखता।

दरअसल इसी तरह शिक्षा को समझ का माध्यम बनाने की इच्छा तो दिखती है मगर वहां भी इरादा गायब है। इसके लिए जो सबसे जरूरी कदम है, वह शिक्षा से परीक्षा का आतंक हटाना है। आज बच्चे किसी विषय को गहरी समझ के लिए नहीं पढ़ते, वह बस नंबर लाने के लिए पढ़ते हैं। साहित्य, इतिहास, भूगोल या विज्ञान उनके लिए दुनिया को जानने और जीवन को समझने का जरिया नहीं हैं, १०वीं और १२वीं के बोर्ड में अधिकतम अंक लाने का मामला है। अगर यह परीक्षा हटा दी जाए तो शिक्षा का सबसे बड़ा दुर्गुण दूर हो जाए।

अक्सर सवाल पूछा जाता है कि परीक्षा नहीं तो क्या? छात्रों का मूल्यांकन कैसे होगा? परीक्षा हटाने से शिक्षा का एक और संकट दूर होगा। शिक्षकों और स्कूलों को यह स्वतंत्रता और स्वायत्तता होगी कि वे अपने ढंग से अपने छात्रों का मूल्यांकन करें और देखें कि वे अगली कक्षाओं में कैसे जा सकते हैं। इससे पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों की जकड़बंदी भी कम होगी और शिक्षक सिर्फ पुस्तकों और छात्रों के बीच का एजेंट नहीं होगा, वह वाकई गुरु की भूमिका में होगा। लेकिन मौजूदा शिक्षा नीति तो शायद यह स्वायत्तता भी छीनती दिखाई पड़ती है।

दूसरी बात यह कि उच्च शिक्षा नीति को लेकर भी कोई नीतिगत सोच यहां नहीं दीखती। ग्रेजुएशन केअलग-अलग स्तरों पर सर्टिफिकेट, डिप्लोमा या डिग्री देने की सूझ नई नहीं है। कई साल पहले दिल्ली विश्वविद्यालय में इस पर अमल की कोशिश हुई थी जिसका बहुत तीखा विरोध किया गया था। एमफिल हटा देने का फैसला निश्चय ही शोधार्थियों के लिए राहत भरा है, लेकिन शोध की **गुणवत्ता सुधारने के लिए शिक्षा नीति में कोई प्रस्ताव नहीं है।**

मगर मौजूदा उच्च शिक्षा संस्कृति का जो सबसे बड़ा दुर्गुण है उसे नई शिक्षा नीति में या तो देखा ही नहीं गया है या फिर शिक्षा को उसी तरफ़ ले जाने की तैयारी है। आज की उच्च शिक्षा सिर्फ तकनीकी या कारोबारी कौशल का पर्याय हो गई है। बच्चे १२वीं पास करके किसी इंजीनियरिंग या मेडिकल संस्थान में दाखिला ले लेते हैं और ४ साल बाद एक डिग्री या डिप्लोमा लेकर किसी कंपनी में खप जाते हैं। जो ज़्यादा होशियार होते हैं, वे प्रबंधन की पढ़ाई में चले जाते हैं। कुल मिलाकर पढ़ाई का इकलौता मक़सद अच्छी नौकरी पाना हो जाता है और अच्छी नौकरी का मतलब पैसे वाली नौकरी होता है।

> दुर्भाग्य से हमारा मौजूदा सत्ता प्रतिष्ठान जिस विचारधारा द्वारा पोषित और प्रेरित है उसकी सारी दृष्टि विभाजनकारी है। उसमें पुराने पत्थरों को तराशने और पुराने देवताओं को पूजने का उत्साह जितना भी हो, नए मनुष्य और नया समाज बनाने का सपना नहीं है।

निश्चय ही शिक्षा को रोटी और रोज़गर से जोड़ने की ज़रूरत है, लेकिन उतनी ही ज़रूरत किसी व्यक्ति के समग्र बौद्धिक और संवेदनात्मक विकास की भी है। इस काम में मौजूदा शिक्षा उसकी मदद नहीं कर रही है। पुराने सरकारी विश्वविद्यालय अब खंडहरों में बदल रहे हैं। लेकिन एक दौर था जब वे अपनी सारी अराजकता के बावजूद बेलगाम किशोर शक्ति को ज़िम्मेदार नागरिकों में बदल कर समाज को लौटाते थे। आज उसकी जगह एक उद्धत उपभोक्ता समाज पैदा हो रहा है जो ऊपर से बहुत चमकीला, मगर अपने मूल में बहुत हिंसक और संवेदनहीन है। कला संकाय की घटती हुई अहमियत और नौकरी देने लायक पढ़ाई करवाने की सोच ने भी यह समाज पैदा किया है।

कुल मिलाकर इस नई शिक्षा नीति में किसी आमूलचूल परिवर्तन की परिकल्पना नहीं है। कुछ सजावटी किस्म के बदलाव जरूर हैं लेकिन वे बहुत दूर तक नहीं ले जाते। मगर यह परिकल्पना पैदा कहां से हो? दुर्भाग्य से हमारा मौजूदा सत्ता प्रतिष्ठान जिस विचारधारा द्वारा पोषित और प्रेरित है उसकी सारी दृष्टि विभाजनकारी है। उसमें पुराने पत्थरों को तराशने और पुराने देवताओं को पूजने का उत्साह जितना भी हो, नए मनुष्य और नया समाज बनाने का सपना नहीं है। ❑

ई-००४, जनसत्ता, अपार्टमेंट्स
सेक्टर-६, वसुंधरा, गाजियाबाद-१० (उत्तरप्रदेश)
मो.-९८११९०१३९८



विवेकानंद माथने

❑

गांधी विचारधारा से जुड़े हैं विवेकानंद माथने। उनका यह लेख बापू के मर्म को दर्शाता है। बापू की वेदना गरीब और अमीरों की विषमता है। बापू की चिंता देश के गांवों में बसे किसानों, मजदूरों और ऐसे लोगों की है जो स्वयं अन्न पैदा करते हैं और खुद भूखे रहते हैं। जो दूध पैदा करते हैं, लेकिन उनके बच्चों को ही दूध नसीब नहीं होता। यह स्थिति बहुत ही शर्मनाक है भयानक है, बापू की चिंता गरीबों की बुनियादी आवश्यकताओं के पूरा होने की है।

प्रस्तुत आलेख संपूर्ण गांधी वांड्मय से लिया गया है और उन्हीं के शब्दों में है। पाठक विवेकानंद माथने के इस आलेख को पढ़कर बापू के हृदय की गहराइयों को जान पाएंगे और पढ़ने का लाभ उठा सकेंगे। ❑ सं.

विषमता के विरुद्ध

बापू का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत

मैं स्वराज हासिल करने के लिये प्रयासरत हूं। उन जी-तोड़ मेहनत करनेवाले और बेरोजगार लाखों करोड़ों लोगों के लिये, जिन्हें दिन में एक बार भी भरपेट खाना नसीब नहीं होता और बासी रोटी के एक टूकड़े और चुटकी भर नमक के सहारे जिंदगी घसीटनी पड़ती है।

आज अमीर और गरीब में जो विषमता है वह दु:खदायी है। गरीब गांववालों की एक विदेशी सरकार और स्वयं उनके देशवाले शहर निवासी शोषण करते हैं। वे अन्न पैदा करते हैं लेकिन खुद भूखे रहते हैं। वे दूध पैदा करते हैं और उनके बच्चों को दूध नसीब नहीं होता। यह स्थिति शर्मनाक है।

जब तक धनवानों और लाखों करोड़ों भूखे लोगों के बीच की खाई नही पटती तब तक अहिंसक किस्म की सरकार की स्थापना करना नितांत असंभव है। नई दिल्ली के आलीशान भवनों और उनके पास ही मजदूरों की टूटी-फूटी झोपड़ियों का अंतर स्वतंत्र भारत में एक दिन भी नहीं चल सकता, जिसमें देश के गरीब लोगों के हाथों में भी उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि सर्वाधिक धनी लोगों के हाथों में।

मेरे विचार में भारत और भारत ही क्यों सारी दुनिया का आर्थिक गठन ऐसा होना चाहिये कि उसमें किसी को रोटी कपड़े की तंगी न रहे। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त काम उपलब्ध होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित भोजन, रहने को ठीक ठाक मकान, अपने बच्चों की शिक्षा के लिये सुविधाएं और पर्याप्त चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध होनी चाहिये। कोई देश ठीक से चल रहा है कि नहीं इसकी कसौटी यह नहीं है की, उसमें लखपतियों की संख्या कितनी है बल्कि यह है कि, वहां के लोगों में भुखमरी नहीं है।

भारत में मुट्ठीभर लोगों के हाथों में पूंजी के केंद्रियकरण की जरूरत नहीं है, बल्कि उसके इस प्रकार के वितरण की जरूरत है कि वह १९०० मील लंबे और १५०० मील चौड़े इस देश के साढ़े सात लाख गावों को सहज प्राप्य हो सके। अगर धनवानों ने अपनी धन दौलत और उससे प्राप्त शक्ति का स्वेच्छा से त्याग न किया और आम जनता को उसके हित के लिये उसमें साझीदार न बनाया तो निश्चित रूप से एक दिन हिंसक और रक्तरंजित क्रांति हो जायेगी।

अगर भारत चाहता है कि दुनिया के सामने स्वतंत्र जीवन का ऐसा आदर्श पेश करें, जिससे कि सारी



बापू कहते हैं कि यदि धनवान सही अर्थों में गरीबों के अभिभावक बनने को तैयार नहीं होते और उन्हें ही अधिक से अधिक कुचला जाता है तो ऐसे में मुझे दो सही और अचूक उपाय सूझे हैं। अहिंसक असहयोग और सविनय अवज्ञा। हमारा हथियार हर हालत में सत्याग्रह होगा।

दुनिया को ईर्ष्या पैदा हो, तो मेहतर, डॉक्टर, वकील, शिक्षक, व्यापारी तथा दूसरे सब लोगों को दिनभर ईमानदारी से काम करने के लिये समान वेतन मिलना चाहिये। वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिये, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है और सादा, मेहनत मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है। शायद इस आदर्श तक पहुंचना भारतीय समाज के लिये कभी भी संभव ना हो लेकिन उस दिशा में जाने के लिये प्रयास करना हर भारतीय व्यक्ति का कर्तव्य है। अगर यह हो सका तो भारत एक सुखी देश बन जायेगा।

आर्थिक समानता की मेरी जो कल्पना है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास सचमुच एक बराबर रकम होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य के पास जरूरत भर का पर्याप्त धन होगा। आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ है हर मनुष्य को उसकी जरूरत के अनुसार मिले। बुनियादी आवश्यकताओं के ज्यादा होने पर मैं कोई निषेध नहीं लगाना चाहता, लेकिन जब गरीबों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हो जायें, उसके बाद ही और चीजों की बात पैदा होती है। पहली चीज पहले ही आना चाहिए।

मैं उन व्यक्तिओं को जो आज अपने आप को मालिक समझ रहे हैं, न्यासी के रूप में काम करने के लिये आमंत्रित कर रहा हूं अर्थात यह आग्रह कर रहा हूं कि वे स्वयं को अपने अधिकार के बदौलत मालिक न समझें, बल्कि उनके अधिकार की बदौलत मालिक समझें जिनका उन्होंने शोषण किया है। ट्रस्टी या न्यासी वह है जो ट्रस्ट के अपने दायित्वों को ईमानदारी से और अपने आश्रितों के सर्वोपरि हित के लिये निभाता है।

वर्तमान धनाढ्यों के सामने दो ही रास्ते हैं। या तो वे वर्ग संघर्ष के लिये तैयार हों और फिर से स्वेच्छा से अपनी संपत्ति के ट्रस्टी बन जायें। उन्हें अपनी संपत्ति की देखभाल करने का और संपत्ति में वृद्धि करने की अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की आजादी होगी लेकिन अपनी खातिर नहीं बल्कि राष्ट्र की खातिर और इसलिये वे शोषण नहीं कर सकेंगे।

मैं अगर दस करोड़ का मालिक हूं तो जिनकी बदौलत मैंने यह दस करोड़ पैदा किये हैं, उनके लिये मुझे खर्च करना चाहिये, तब ही मैं ट्रस्टी कहा जा सकता हूं। लेकिन अगर मुझे पांच या पचास रुपयों की जरूरत है और मैं एक हजार रुपये लेकर ऐश करता रहूं तो मैं ट्रस्टी नहीं कहा जा सकता। मैं अपने खर्च के लिये और अपने लड़के लड़कियों के लिये खर्च के लिये भी पैसे ले सकता हूं। लेकिन ऐसा नही होना चाहिये कि मैं अपने लड़कों को पांच दस लाख के शेअर दे दूं और वे भी चार पांच मोटरे रखें और मौज शौक करें। मेरा आदर्श तो यह है कि धनवान लोग अपनी संतान के लिये धन के रूप में कुछ न छोड़े। हां, उनको अच्छी शिक्षा दें, रोजगार धंधे के लिये तैयार करें और स्वावलंबी बना दें।

मान लीजिये कि मेरे पास विरासत में या उद्योग व्यापार करके काफी धन इकट्ठा हो गया है तो मुझे यह समझना चाहिये कि यह सारा धन मेरा नहीं है, मेरा अधिकार तो बस सम्माननीय ढंग से रह सकने का है और इसका स्तर उसके ऊपर नहीं होना चाहिये जो लाखों लोगों को प्राप्त है। मेरा शेष धन समुदाय का है और वह उसी के कल्याण में खर्च किया जाना चाहिये। समाज एक बृहद परिवार ही तो है।

न्यासी जो सेवा करेंगे, समाज के लिये उसके मूल्य को देखते हुये उन्हें राज्य की ओर से उपयुक्त कमीशन दिया जायेगा। उनके बच्चों को प्रबंधक बने रहने दिया जायेगा बशर्ते कि वे इस कार्य के लिये अपनी योग्यता सिद्ध कर सकें। किसी न्यासी का जनता के सिवा कोई और उत्तराधिकारी नहीं होता। अहिंसा

के आधार पर निर्मित राज्य में न्यासियों का कमीशन नियमित होगा। मैं इस कमीशन के लिये कोई निश्चित प्रतिशत नहीं तय कर रहा हूं, बल्कि उनसे उतनें की ही मांग करने को कहता हूं जितने का वे अपने आपको पात्र समझते हैं।

उदाहरण के लिये, जिसके पास सौ रुपये होंगे उससे मैं पचास अपने पास रखने और पचास मजदूरों को दे देने के लिये कहूंगा। लेकिन जिसके पास एक करोड़ रुपये होंगे उससे मैं, समझ लिजिये, एक प्रतिशत ही रखने को कहूंगा। तो इस तरह आप समझ सकते हैं कि मेरा कमीशन निश्चित अनुमान में नहीं होगा, क्योंकि वैसा अनुपात तय करने से कुछ के साथ अन्याय होगा।

मैं अहिंसक तरीके से और घृणा के विरुद्ध प्रेम की शक्ति के प्रयोग द्वारा लोगों को अपने दृष्टिकोण से सहमत करके आर्थिक समानता स्थापित करुंगा। मैं इस बात की प्रतीक्षा नहीं करुंगा कि पहले सब लोग मेरे दृष्टिकोण के समर्थक बन जायें, बल्कि मैं तो सीधे अपने साथ ही इसकी शुरुआत कर दूंगा। यह बात साफ है कि यदि मेरे पास पचास मोटरे हों, या दस बीघा जमीन भी हो तो मैं अपनी कल्पना की आर्थिक समानता स्थापित नहीं कर सकता। इसके लिये मुझे अपने को गरीब से गरीब आदमी के स्तर पर लाना होगा। पिछले पचास साल या उससे भी ज्यादा से मैं यही करने की कोशिश कर रहा हूं।

हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अगर हम अपनी गरीबी में सुखी और आनंदित रहेंगे, तो धनवान लोग भी हमारी नकल करेंगे। सच तो यह है कि गरीबी में धन का दर्शन करने वाले तो इने गिने ही पाये जाते हैं। इसलिये हमें अपने जीवन द्वारा यह सिद्ध करके दिखाना होगा असल में धर्म के रूप में स्वीकार की गई गरीबी ही सच्ची संपत्ति है।

इस गरीब देश में भी कुछ नये कर लगाने की गुंजाइश है। संपत्ति पर अभी काफी कर नहीं लगा है। संसार के अन्य देशों में जो कुछ भी हो, यहां तो व्यक्तियों के पास अत्याधिक संपत्ति का होना भारत की मानवता के प्रति एक अपराध ही समझा जाना चाहिये। इसलिये संपत्ति की एक निश्चित मर्यादा के बाद जितना भी कर उसे लगाया जाये, थोड़ा ही होगा। जहां तक मुझे पता है, इंग्लैड में व्यक्ति की आय एक निश्चित राशि तक पहुंच जाने के बाद उससे आय का ७० प्रतिशत तक कर लिया जाता है। कोई वजह नहीं है कि भारत में हम इससे भी अधिक कर क्यों न लगायें।

मृत्यु कर भी क्यों न लगाया जाये? करोड़पतियों के लड़के जो बालिग होने पर भी विरासत में पैतृक संपत्ति पाते हैं, परंतु इस विरासत के कारण ही नुकसान भी उठाते हैं और राष्ट्र की तो दुहरी हानि होती है। क्योंकि जो विरासत असल में राष्ट्र की होनी चाहिये, वह उसे नहीं मिलती और दूसरे, राष्ट्र का इस तरह भी नुकसान होता है कि संपत्ति के बोझ के कारण वारिसों के संपूर्ण गुणों का विकास भी नहीं हो पाता।

न्यासिता समाज की वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था को समतावादी व्यवस्था में रूपांतरित करने का एक साधन है। न्यासिता पूंजीवाद को बख्शती नहीं है, पर वह वर्तमान मालिक वर्ग को सुधार का एक अवसर प्रदान करती है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि मानव प्रकृति कभी सुधार से परे नहीं होती। वह संपत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अधिकार स्वीकार नहीं करती; हां, उसमें समाज स्वयं अपनी भलाई के लिये किसी हद तक इसकी इजाजत दे सकता है। उसमें धन के स्वामित्व और उपयोग के कानूनी नियमन की मनाही नहीं है।

इस प्रकार राज्य द्वारा नियंत्रित न्यासिता में कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये या समाज के हित के विरुद्ध संपत्ति पर अधिकार रखने या उसका उपभोग करने के लिये स्वतंत्र नहीं होगा। न्यूनतम जीवन वेतन तय करने की जैसे योजना है, वैसे समाज में किसी भी व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा कितना मिले इसकी मर्यादा तय करना भी जरूरी है। इस न्यूनतम और अधिकतम के बीच का अंतर उचित तथा न्यायसंगत होना चाहिये और इस तरह बदलते रहना चाहिये जिससे वह आखिर खत्म ही हो जाय।

अधिकतम प्रयास के बावजूद अगर धनवान सही अर्थों में गरीबों के अभिभावक बनने को तैयार नहीं होते और गरीबों को अधिकाधिक कुचला जाता है और वे भुखमरी के शिकार बनते हैं तो क्या करना होगा? इस पहेली को सुलझाने की कोशिश करते करते मुझे दो सही और अचूक उपाय सूझे हैं और ये हैं अहिंसक असहयोग तथा सविनय अवज्ञा। हमारा हथियार सत्याग्रह होगा। ❑

विवेकानन्द माथने, ६७, जवाहर नगर, अमरावती–४४६०४ (महाराष्ट्र)

अध्यापक की पाती अपने छात्रों के नाम



आलोक कुमार मिश्रा

❑

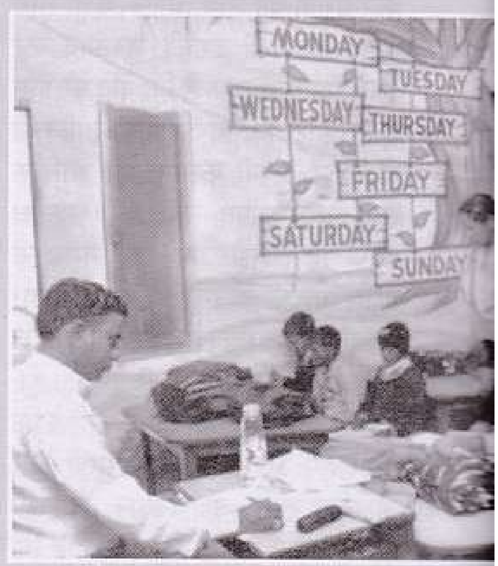
बहुत कम अध्यापक ऐसे होते हैं जो अपने विद्यार्थियों के नाम पत्र लिखते हैं, उनसे रूबरू होना चाहते हैं और अपने मन की बात उनसे कहना चाहते हैं। आलोक मिश्र ने शिक्षक दिवस पर ऐसा करके एक नई पहल शुरू की है। आलोक जी दिल्ली सरकार में अध्यापक हैं। शिक्षा पर पढ़ते हैं। शिक्षा चिंतन में संलग्न रहना चाहते हैं और काम के अनुभव को पचाते हुए और गुनगुनाते हुए कविता भी लिखते हैं। पिछले दिनों इनकी ड्यूटी कोविड१९ के क्वारेन्टीन केन्द्र पर लगी थी। स्वभाव से ही कर्मठ आलोक ने उसे भी बखूबी निभाया। अपने विद्यार्थियों के नाम यहां लिखा गया पत्र उनकी छात्र वत्सलता को दर्शाता है और उनकी मनोभावना को भी। सं.

प्यारे विद्यार्थियों,

कल ५ सितंबर यानी शिक्षक दिवस है। इस अवसर पर तुम सबसे कुछ कहने का मन है। सोचता हूं कहां से शुरू करूं! तुम्हें लगता होगा कि क्लास में हम शिक्षक ही तुम्हें पढ़ाते-सिखाते हैं। पर यकीन मानो अनुभव में तुम सब से ज्यादा होते हुए भी हम शिक्षक भी रोज कुछ नया सीखते हैं। तुम्हारी बातें, जीवन के अनुभव, चंचलता, कभी-कभी हैरान कर देने वाले काम और सबसे बढ़कर बहुत कुछ जानने की जिज्ञासा, यह सब बातें हम शिक्षकों को नया सीखते रहने को प्रेरित करती हैं। उम्र बढ़ने के साथ ये आदतें कुछ कम हो जाती हैं। पर तुम सब में तो भरपूर होती हैं।

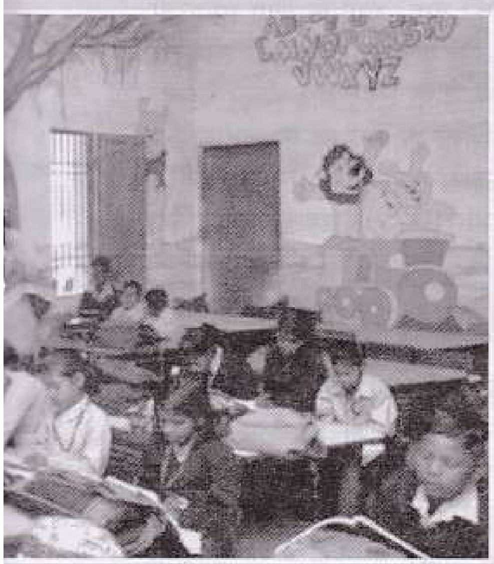
वैसे सीखना सदा सामूहिक रूप से ही होता है और इस मामले में हम सब एक ही टीम हैं। क्लास के अंदर अपने दोस्तों और अध्यापकों के साथ सीखने, मजे करने का जो अनुभव होता है, वह ताउम्र याद रहता है। मुझे तो यह इतना याद रहा कि मैंने पूरी जिंदगी स्कूल में रहना ही चुना और शिक्षक बना। शिक्षकीय पेशे में होना हम शिक्षकों के लिए महज आठ घंटे की नौकरी नहीं बल्कि पूरा जीवन होता है।

शिक्षक अक्सर आप लोगों को विषयों को पढ़ने, याद करने, अभ्यास कार्य लिखने और दुहराने को कहते ही रहते हैं। पर मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूं। हमारे जीवन में पढ़ाई-लिखाई और किताबें बेशक बहुत उपयोगी हैं, लेकिन जिंदगी किताब नहीं है। किताबें तो



बस उसे समझने में मददगार होती हैं। कुछ भी करते हुए हम सीखते रहते हैं। इस करने में खेलना, महसूस करना, काम में हाथ बंटाना, घूमना, दोस्तों के साथ मस्ती करना, जानवरों और पक्षियों को देखकर खुश होना, प्रकृति को निहारना सभी कुछ शामिल हैं। इसीलिए यह सब खूब मन लगाकर करो। हां, जीवन में अनुशासित होना भी जरूरी है। हमें अपनी प्राथमिकताएं तय करनी चाहिए और सभी कामों में सामंजस्य बनाना चाहिए। अपने विषयों और दूसरी अच्छी किताबों को मन लगाकर पढ़ना बहुत जरूरी है।

प्यारे बच्चों, लिखना भी एक मजेदार गतिविधि है। अपने अनुभवों को कहानी, संस्मरण, कविता, चित्र आदि के रूप में दर्ज करने से हमारी रचनात्मकता तो बढ़ती ही है, हमारे स्वयं के सोचने-समझने के कई सिरे भी खुलते हैं।



प्रकृति सबसे बड़ी शिक्षिका है। खिलते हुए फूल, उड़ती हुई चिड़िया, आसमान में तैरते हुए बादल, बहती हुई नदी सब कितने अच्छे लगते हैं, है ना! ऐसी बहुत सी बातों ने मनुष्यों को खोजने और अविष्कार करने को सदा प्रेरित किया है।

एक बात और। गलती, भूल, सुधार सब सीखने के हिस्से हैं। सफलताएं हमें और बेहतरी की ओर जाने को प्रेरित करती हैं तो असफलताएं भी बहुत कुछ सिखाती हैं। बल्ब का अविष्कार करने वाले थॉमस अल्वा एडीसन का नाम आपने जरूर सुना होगा। बहुत बार असफल होने के बाद भी उन्होंने हार नहीं मानी थी। वे कहते थे कि मैं हर बार असफल होकर भी यह सीखता हूं कि यह काम इस तरीके से नहीं होगा। अंत में उन्हें सफलता मिली और पूरी दुनिया रोशन हुई। बिना जगमग बल्बों के क्या आप आज की दुनिया की कल्पना कर सकते हैं?

शिक्षा जीवन को गहराई से समझने, व्यक्ति को एक जिम्मेदार इंसान बनाने में मददगार होती है। वह हममें सोच-समझ कर फैसले लेने, परिस्थितियों का सामना करने, किसी भी बात को गहराई से समझने और अच्छा व्यवहार करना सीखने की क्षमता पैदा करती है। अपने आस-पास के परिवेश और देश से प्रेम एक सहज मानवीय भाव है। जहां हमें अपने देश के गौरवशाली अतीत, स्वतंत्रता के साझे संघर्षों और संविधान में पिरोए गए मूल्यों पर गर्व करते हुए उनका सम्मान करना चाहिए, वहीं ऐसे प्रयास भी करने चाहिए कि हम अपने देश और समाज को निरंतर बेहतर बना पाएं।

एक बात और, हमारा देश जहां विविधता से परिपूर्ण है, वहीं बहुत सारी असमानताएं भी हैं। हमें सभी पहचानों के प्रति समानता और सम्मान दर्शाते हुए और एक-दूसरे के अधिकारों और गरिमा को बनाए रखते हुए शोषण, गैर बराबरी और अन्यायों के विरोध में आवाज उठानी चाहिए। किसी भी व्यक्ति से महज इस कारण नफरत करना या उसके प्रति अलग सोच रखना क्योंकि वह आपकी पहचान से अलग पहचानों से जुड़ा है, गलत है।

शिक्षा हमें ऐसे पूर्वग्रहों और बुरी धारणाओं से बचा कर बेहतर इंसान बनने की ओर भी ले जाती है। बच्चो, तुमने गांधी जी का विश्व प्रसिद्ध जंतर पढ़ा ही होगा, जिसमें कुछ भी करने से पहले वह यह सोचने को कहते हैं कि इस काम को करने से समाज के सबसे कमजोर और गरीब व्यक्ति को क्या फायदा या नुकसान होगा। यदि हम जीवन में इसे अपना पाएं तो यह जीवन जीने का अमूल्य मंत्र साबित होगा।

प्यारे बच्चो, सीखने के लिए जिज्ञासा का होना और सवाल पूछना जरूरी है। हर बात को बेहतर ढंग से और अलग-अलग दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करो। शिक्षकों और बड़ों का सम्मान करो और जहां उचित लगे सवाल भी उठाओ।

शेष पृष्ठ १६ पर...

अध्यापक की पाती...

पृष्ठ १५ से

अपनी रुचियों और क्षमताओं को पहचान कर पूरे जी-जान से उसमें जुटो। कुछ भी करने से पहले सोचो कि उनका जो समाज में गरीब, कमजोर या हमसे अलग पहचान वाले लोग हैं। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। आपके माता-पिता, अभिभावक, स्कूल, शिक्षक सब आपके साथ हैं। उम्मीद है आप भी इन लोगों को समझने का खूब प्रयास करेंगे और जहां जरूरी हो सहयोग भी करेंगे। आखिर हम सब मिलकर जितना अच्छा कर सकते हैं उतना अकेले नहीं। मैंने पहले भी बताया है न कि हम सब एक ही टीम में हैं।

अंत में कहूंगा कि शिक्षक दिवस पर विद्यार्थियों की शुभकामनाएं हम शिक्षकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। वैसे हमें असली खुशी अपने विद्यार्थियों की सफलता, उनकी अच्छाइयों और गुणों को देखकर मिलती है। याद रखना, तुम सब अनोखे हो, सब में बहुत कुछ अच्छा करने की क्षमता है। बस अपनी मजबूती को पहचानो और आगे बढ़ो। सब अच्छा होगा। जो अच्छा नहीं होगा उसे हम मिलकर अच्छा कर लेंगे।

शिक्षक दिवस की हम सबको बधाई। जय हिंद। ❑

आलोक कुमार मिश्रा
(आपका दोस्त शिक्षक)

'नई शिक्षा नीति' के लक्ष्य ?

अनिल सिंह

❑

बहु-प्रतीक्षित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' (एन.ई.पी.-२०२०) एक दिन एकदम से आई और एकदम से ही स्वीकार ली गई। कोई चिल्ल-पों नहीं हुआ। तर्क यह कि पहले ही राष्ट्रव्यापी, बहुस्तरीय कन्सलटेशन और सुझाव आदि हो चुका है और इस तरह अब यह फुल-प्रूफ शिक्षा नीति

जनाकांक्षाओं और जन-अपेक्षाओं से ओत-प्रोत है। दावा है कि इसे समय की नब्ज को पहचान कर बनाया गया है और इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसका आमतौर पर संदेह किया जा रहा था। पर संदेह न करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि क्रियान्वयन को मौजूदा सरकार और उसकी कार्य प्रणालियों व नीति-रीति के बरक्स देखना भी तो जरूरी है।

सन् १९५० से हम शिक्षा को संविधान के 'नीति निर्देशक सिद्धांतों में शामिल करके, एक-से-एक नीतियां और कार्यक्रम बनाते चले आए हैं। उन दिनों हमने दम ठोककर, दस सालों में सभी बच्चों को समान रूप से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने का वादा किया था। तब तो राजनीतिक प्रतिबद्धता भी थी, अब वह थोड़ी संदेहास्पद है। सन् १९५० से गिनें तो ७० साल हो गए हैं, लेकिन नतीजा सिफर से थोड़ा ही आगे आया है। अब 'नई शिक्षा नीति-२०२०' के अनुसार दस सालों में स्कूल में स्कूल से बाहर हुए २ करोड़ बच्चों को वापस लाने का विशाल लक्ष्य सचमुच विशाल है। यह न होने जैसी बात का ही दुहराव मात्र है।

'एनईपी-२०' बाकी नीतियों की तरह ही एक गोल-माल नीति है। समय के साथ यह समय की जरूरतों को पूरा करने वाली नीति ही कही जा सकती है। यह नीति वैश्विक विकास एजेंडा की बात करती है और इसीलिए २०३० तक सभी देशों की तरह, सभी के लिए समावेशी और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिये जाने के लक्ष्य को सामने रखती है। भारत के लिए यह वैश्विक एजेंडा, विश्वबैंक के उस एजेंडे से कदमताल करता है जिसकी साफ हिदायतें हैं कि राज्य का ऐसा कल्याणकारी स्वरूप (वेलफेयर स्टेट) धीरे-धीरे खत्म करते जाना चाहिए जो मुफ्तखोरी को बढ़ावा देता है। जनता को स्वयं सक्षम और उपभोक्ता बनने की दिशा में ले जाया जाना चाहिए।

'स्किल इंडिया' के बाद एक बार फिर ज्ञान और तकनीकी के नाम पर आत्मनिर्भरता के जुमले के साथ स्कूल शिक्षा को 'स्किल बेस्ड नॉलेज' (हुनर आधारित ज्ञान) और 'रिसोर्स' (संसाधन) से जोड़ने की बात बहुत ही चतुराई से कही गई है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि बुनियादी तालीम के साथ गांधी का भी सपना आत्मनिर्भर समाज बनाने का रहा था जिसमें शिक्षा को रोजगारोन्मुखी, जीवन और समुदाय से जुड़ी, श्रम के प्रति सम्मान सिखाने वाली, ग्राम स्वराज की ओर ले जाने वाली माना गया था, लेकिन इस नीति में जो प्रावधान है वे ग्राम-स्वराज के लिए नहीं, बल्कि बाजार राज के लिए जान पड़ता है।

स्कूल के दौरान ही वोकेशनल ट्रेनिंग (व्यवसायिक प्रशिक्षण, कौशल उन्नयन और विषय की तरह उनकी पढ़ाई व प्रशिक्षण, शिक्षा और उसके अनुशासन में विविधता की बात तक तो ठीक है, लेकिन इसकी मंशा पर गौर करना जरूरी है। मौजूदा 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय ' की ही एक रिपोर्ट कहती है कि 'ड्राप-आउट रेट' (स्कूल छोड़ने वालों की दर) ४० प्रतिशत है, हर साल नामांकित में से ५० प्रतिशत बच्चे ही ८ वीं तक पहुंचते हैं, उनमें भी १७ प्रतिशत लड़कियां १४ साल या ८ वीं के बाद स्कूल छोड़ देती हैं, १२ वीं तक सिर्फ १० प्रतिशत बच्चे पहुंचते हैं। छूटने वाले और पहुंचने वाले ये कौन बच्चे हैं यह किसी से छिपा नहीं है। दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, ग्रामीण लड़कियों और विशेष जरूरतों वाले बच्चों का शिक्षा के इस संसार में क्या हश्र है इसके लिए ये आंकड़े पर्याप्त हैं। अब आठवीं (१४ साल की उम्र) तक उन्हें किसी कौशल से नवाजने का मतलब आखिर क्या है? क्या एक बार फिर कामधंधों के हिसाब से जातियों वाला समाज बनने जा रहा है। क्या बच्चे अपने पुश्तैनी काम-धंधों में धकेल दिये जाएंगे? क्या उन्हें एक ऐसे मानव संसाधन के रूप में तैयार करके छोड़ दिया जाएगा जो बाद में कॉरपोरेट जगत के लिए कल-पुर्जे की तरह इस्तेमाल किए जाएंगे? क्या शिक्षा इसी का नाम है जिसके लिए इतनी महत्वाकांक्षी नीति बनाई गई है? या फिर ज्ञान के 'सुपर पॉवर' वाले जुमले की आड़ में यह सस्ते श्रम उपलब्ध कराने वाले बाजार खड़े करने की दूरगामी योजना है? सवाल कई हैं, क्योंकि मंशा में खोट है।

छह से १४ साल तक के शिक्षा के अधिकार कानून का दायरा बढ़ाकर ३ से १८ साल कर दिया गया है और अब मध्यान्ह भोजन के साथ नाश्ते का भी वादा किया गया है। इसे कुछ मायनों में ठीक कहा जा सकता है, लेकिन पिछला कानून ही जब कुछ नहीं कर पाया तो अब सिर्फ प्रावधान करने भर से क्या हो जाएगा? क्या ही अच्छा होता यदि तीन से १८ साल के इस निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार के लिए भी तुरत-फुरत कानून बना दिया जाता। जब तक यह नहीं होता, यह दिखावटी झुनझुने से ज्यादा कुछ नहीं होगा।



जैसा दिखता है

आसमान जैसा दिखता है
वैसा नहीं है
और न धरती
जैसी दिखती है वैसी है
ठीक नहीं कह सकता कोई
वह कैसा है यह कैसी है

मगर फिर भी
अन्धी आंखों बहरे कानों
हमें सब-कुछ
देखना-सुनना पड़ता है
गलत देखे-सुने में से
बेकाम का ही सही
कुछ चुनना पड़ता है!

–भवानीप्रसाद मिश्र

कर्मकाण्ड के बंधन से हमें चाहिए आजादी



इस आने वाली नस्ल को
कोई संवारे तो।
इन मोतियों को इलम से
कोई निखारे तो।
अल्फाज बोलते भी हैं,
अल्फाज खाब हैं।
इनके दिलों में बात ये
कोई उतारे तो।

इस नस्ल के ही हाथ में
सब अख्तियार है।
ये खेद ही रौशनी है
ये खुद ही बहार है।

– कश्मीरी लाल जाकिर

शोषण के हर करतब से हमें चाहिए आजादी

बच्चों के सीखने के शुरुआती महत्वपूर्ण सालों (३ से ६ साल) को औपचारिक ढांचे में बांधकर उन्हें स्कूल की दृढ़ संरचना के भीतर लाना एक तरह से उदार, लचीले नैसर्गिक और स्वाभाविक रूप से सीखने के सिद्धांतों के विरुद्ध है। उसका 'ढांचाकरण' और केन्द्रीय नियंत्रण एक बार फिर सवाल खड़े करता है कि कहीं यह एक वैचारिक घुट्टी पिलाने की कवायद का हिस्सा तो नहीं है?

नई नीति एक लोक-लुभावन बयान देती है कि प्राइवेट स्कूलों पर नकेल कसी जाएगी। यह हर सरकार कहती है और उसके नियमन का एक ढांचा भी बनाती है, लेकिन दूसरे रास्ते से वही सरकार निजी स्कूलों को तमाम तरह की रियायतें देती है, फीस के बहाने लूट की खुली छूट देती है। अब फिर बाजारीकरण और निजीकरण को रोकने की खातिर सरकार की तरफ से कोई नियामक और नियंत्रक ढांचे का जिक्र इस नीति में नहीं है, बल्कि इसके उलट, 'पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप' (सार्वजनिक निजी गठबंधन) को बढ़ावा देने की बात करती है। तमाम कॉरपोरेट फाउंडेशन, पाठ्यक्रम बनाने से लेकर, शिक्षण प्रशिक्षण, स्कूल प्रबन्धन, मूल्यांकन और निगरानी के काम में आगे आ रहे हैं और सरकार के सलाहकार की भूमिका में हैं। शिक्षक-प्रशिक्षण की 'डाइट' जैसी सरकारी महत्वाकांक्षी संस्थाओं को दरकिनार कर निजी संस्थान शिक्षा की डिग्रियां बांट रहे हैं। निजी दानदाता संस्थाओं को शिक्षा के क्षेत्र की कमान सौंप कर एक तरह से निजीकरण, व्यवसायीकरण और कॉर्पोरेटीकरण को ही प्रोत्साहित किया जा रहा है, ताकि शिक्षा का भार परिवारों पर पड़े और राज्य की जवाबदेही धीरे-धीरे खत्म हो।

उससे भी आगे विरोधाभास तो यह है कि युक्ति-युक्तकरण के नाम पर अकेले मध्यप्रदेश में ही हजारों स्कूल बंद करने का पूरा बंदोबस्त कर लिया गया है। इसके नाम पर बजट कटौती और मर्जर का काम तेजी से चल रहा है। 'नई शिक्षा नीति-२०२०' इस पर चुप्पी साधे दिखती है। 'सकल घरेलू उत्पाद' (जीडीपी) का ६ प्रतिशत शिक्षा में खर्च करने का वादा तो है पर ये जुटाया कहां से जाएगा, इस पर कोई खुलासा नहीं है। क्या विश्व बैंक और कॉरपोरेट पूंजी मिलकर देश की शिक्षा व्यवस्था चलाने वाले हैं ? क्योंकि एक तरफ से 'ऋण' आ रहा है और दूसरी तरफ से विचार। ये जुगलबंदी गरीब-गुरबा के बच्चों के लिए क्या समावेशी और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की चिंता करेगी या कारपोरेट धर्म निभाएगी। समय की मांग है बाजार, बाजार और बाजार। और सब जानते हैं कि यह सरकार समय की नब्ज पहचानती है। 'नई शिक्षा नीति' में इस बाजार की जरूरत को पूरा करने और भारत में सस्ता, कुशल श्रम उपलब्ध कराने के पूरे इंतजाम कर लिए गए है। ❑

सप्रेस से साभार



ओजस्वी बुद्धिजीवी प्रोफेसर डी.डी. हर्ष



सुन्दरलाल बोहरा

❑

शिक्षक दिवस के अवसर पर हम एक नयी लेख-श्रृंखला की शुरुआत कर रहे हैं। पहला आलेख है श्री डी.डी. हर्ष पर। प्रोफेसर डी.डी. हर्ष इतिहास के व्याख्याता थे। डी.डी. हर्ष को इतिहास के अलावा राजनीति, विज्ञान, समाजशास्त्र एवं अन्य विषयों के भी गंभीर अध्येता थे। डी.डी. हर्ष जैसा कोई छात्र वत्सल अध्यापक शहर जोधपुर में तब नहीं था। उनके बारे में लिखने वाला सुंदरलाल बोहरा जैसा कोई दूसरा आदमी नहीं मिल सकता। हमने मुंबई फोन करके यह लेख मेल पर मंगया है। भाई बोहरा स्वयं एक विलक्षण विद्वान कवि-मनीषी हैं। सं. ❑

प्रोफेसर डी.डी. हर्ष शिक्षाविद् हरीश जोशी द्वारा स्थापित **अनौपचारिक डाक यूनिवर्सिटी** के आजीवन कुलपति थे।

जिस जगह आज सहकारी बाजार चल रहा है वहां सत्तर के दशक से पूर्व जोधपुर के प्राय: सभी पत्रकार और जिज्ञासु बुद्धिजीवी डी.डी. हर्ष द्वारा मंगवाई गई चाय की चुस्कियां लेते हुए कुछ न कुछ चर्चा करते रहते थे। तत्कालीन डाक बंगले के चायघर में एक बड़ी चौकोनी कत्थई रंग की मेज के अगले सिरे से सटकर अपनी सर्वकालीन सफेद पोशाक में चुस्तीले प्रोफेसेर डी.डी. हर्ष प्रहलादजी या मोहनजी द्वारा लाये गये चायदान से अंग्रेजी ढंग की चाय बनाकर मेज के इर्दगिर्द जमे हुए साथियों का बड़ी आत्मीयता से मनुहारते थे। शास्त्रीय व तर्कपूर्ण ढंग से संशयों का निवारण करने में डी.डी. हर्ष माहिर थे। इतिहास के व्याख्याता होते हुए भी वे मानविकी के हर विषय पर अधिकारपूर्वक बोल सकते थे। उनकी अंग्रेजी क्लिष्ट एवं पांडित्यपूर्ण थी। विभागीय कार्रवाही से त्रस्त कर्मचारियों, मजदूर-संघों तथा विद्यार्थी नेताओं के वे संकटमोचक थे। उनके द्वारा लिखकर थमाये गये स्पष्टीकरण से अड़ियल अधिकारी आश्वस्त हो जाते थे और विभागीय कार्यवाही से तबाह कर्मचारी की नौकरी बच जाती थी। विद्यार्थी नेता मघराज कल्ला किसी मनोरंजन का अंगेजी मसौदा तैयार करवाने के लिए प्राय: डी.डी. हर्ष की ही शरण में आते थे।

किसी भी विषय अथवा घटना का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करना ही डी.डी. की विशेषता थी। हरीश जोशी को वे अपना दीक्षा गुरु मानते थे। मानवेन्द्रनाथ राय का मानवतावाद उन्हें पसंद था। सन् १९६२ से मई

१९७० तक मैं लगातार उनके सपंर्क में रहा हूं लेकिन कभी भी उन्होंने अपने पांडित्य की शेखी नहीं बघारी। और न ही अपने निन्दकों के विरुद्ध कभी अपमानपूर्ण शब्दों का उच्चारण किया। शिष्टाचार और शालीनता में डीडी बेजोड़ थे। दिन रात में वे सिर्फ एक बार ही पूरा खाना खाते थे और परोसे गये खाद्य पदार्थों के बारे में वे कभी भी शिकायत नहीं करते थे। बिना जेब की पूरी बांहों की सफेद कमीज पहनना ही उन्हें पसंद था। पेन व रूमाल रखने की मजबूरी के कारण वे पतलून में जेबें सिलवाते थे। वे पूरी तरह से अपरिग्रही थे। उनके पिता श्यामदास हर्ष तत्कालीन जोधपुर रेल्वे में स्टेशन मास्टर रह चुके थे। माता-पिता उन्हें सांवरा कहते थे। जोधपुर में उनके करीबी दोस्तों को भी उनका पूरा नाम मालूम नहीं था, सभी उन्हीं डी.डी. ही कहते थे। जबकि उनका पूरा नाम द्वारकादास हर्ष था। चौपासनी हाउसिंग बोर्ड की नन्दनवन बस्ती में बसने से पहले वे सरदारपुरा सी रोड पर किराये के मकान में रहते थे। उनके शयन-अध्ययन कक्ष की पूर्वी दीवार पर अध्यापक दातार, स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के मंढे हुए चित्र लगे हुए थे। उनके कमरे में अधिकांश पुस्तकें इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन तथा समीक्षा से संबंद्ध थीं। उनका लेखन चुस्त व सटीक था। वाक्य दुरूह होते हुए भी शब्दाडंबर से अछूते थे। उनकी अंग्रेजी यमकपूर्ण व आलंकारिक थी। उनकी वाणी ओजस्वी थी और वे एक धाराप्रवाह वक्ता थे। श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की कला में वे वाक्‌सिद्ध थे। कानून के किताबी कीड़े उनके पास आकर गतिहीन हो जाते थे। अध्यापन और लेखन को वे पूरी तरह समर्पित थे। रेल्वे की अंकेक्षण सेवा में चुने जाने पर भी उन्होंने अध्यापक बनना ही



पसंद किया। उनका अंग्रेजी का उच्चारण बुलन्द और राजस्थानी वाग्वर्णों से प्रभावित थे। उनकी हिन्दी संस्कृतनिष्ठ थी।

कई लोगों को उनका औपचारिक व्यवहार अखरता था। लेकिन डीडी स्पष्टवक्ता और अनौपचारिक भी थे। रेशमी रूमालों में आलोचना करना वे कतई पसंद नहीं करते थे।

डाक बंगले की मेरी आठ बरस की फेरियों में मैंने सिर्फ सन् १९६३ में डीडी को उदास देखा था। जब मैंने कुरेद-कुरेद कर उनकी उदासी का कारण पूछा तो वे जरा गमगीन व अतीत में खोये हुए प्रतीत हुए। **डाक यूनिवर्सिटी** के कुलपति की सन् १९६३ में हुई दुरावस्था को यादकर मैं आज भी सिहर उठता हूं।

प्रस्तावित शोध कार्यक्रम व शोध प्रबन्ध डीडी तैयार करते थे लेकिन डाक्टरेट किसी और ही व्यक्ति को मिलती थी। शेरे राजस्थान, जयनारायण व्यास द्वारा संपादित अंग्रेजी पत्रिका 'पीप' का पूरा अंक कई बार डीडी ही तैयार करते थे।

विधुर डीडी ने अपनी मृत्यु का आभास मुझे लिखे गये अपने एक मात्र पत्र में दे दिया था। 'माणक' मासिक में जब एक कोने में इस 'विश्वकोष' की मद्रास में मौत होने का समाचार पढ़ा तो मैं सर्दसुन्न हो गया। घर आकर सूटकेस में से उनका ॐ से प्रारंभ सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ अंग्रेजी पत्र निकालकर बार-बार पढ़ा। श्यामवर्णीय चेहरे पर चेचक के छिटपुट हल्के दाग लिये, सुडौल नाक और उन्नत भाल वाला, साढ़े पांच फुट गठीले कद-बदन का, हर मौसम में सफेद कमीज एवं पतलून में चुस्तीला तथा जोधपुर की काली मखमली मोजरी का शौकीन जोधपुर का कृष्ण मेनन अपने बॉस्वेल (डीडी मुझे अपना बॉस्वेल कहते थे- बास्वेल अंग्रेजी के प्रख्यात समीक्षक व शब्दकोशकार सैम्युअल जॉन्सन का जीवनी लेखक था।) को जीवनी के आखिरी अध्याय की सामग्री देने में भी नहीं चूका। ❑

ए-६०४, ऋतुराज वसंत कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, बोरिवली (प), मुंबई-९१



राजेन्द्र बोड़ा

❑

सुप्रसिद्ध विलक्षण संगीतज्ञ हेमंत कुमार की आवाज में दर्द की अनोखी गूंज थी। जो सुनने वाले के अंदर तक उतर जाती थी और उसे बेचैन कर देती थी। वे राग को नहीं बल्कि सुर को पकड़ते थे। कहते हैं कि सुर उनके सामने प्रकट होते थे और ऐसा वातावरण रच देते थे जो सुनने वाले को विभोर कर देता था। उन्होंने पद्मश्री और पद्मभूषण जैसे पुरस्कार अलंकरण स्वीकार नहीं किए। इनकी जन्मशती पर सभी पाठक इस आलेख को पढ़ कर संगीतज्ञ हेमंत कुमार को अच्छे से जान सकेंगे। उनके गीतों का आनंद हृदय की गहराइयों तक पहुंचा सकेंगे। आइए, हम भी हेमंत कुमार की आवाज में डूब कर उसका आनंद लेते हैं। प्रस्तुत है सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री राजेंद्र बोड़ा का आलेख। सं. ❑



आवाज में अध्यात्म के धनी

हेमन्त कुमार

लता मंगेशकर ने हेमंत कुमार के बारे में कहा था कि उनकी आवाज़ ऐसी है मानो कोई साधू मंदिर के बाहर बैठा गा रहा हो। संगीतकार सलिल चौधरी ने कहा भगवान भी अगर गाता तो हेमंत कुमार की आवाज़ में गाता। जिसकी आवाज़ ईश्वर की आवाज सदृश हो तो वह एक सीधा, सरल, और परोपकारी इंसान ही तो हो सकता है। हेमंत कुमार ऐसे ही थे। प्राचीनतम शहरों में से एक वाराणसी जो भारत की धार्मिक राजधानी भी कहलाता है वहां के मंदिरों की घण्टियों की गूंज के बीच जन्मे हेमंत कुमार की आवाज़ में देवीय ओज़ था तो आश्चर्य क्या हो सकता है?

आस्था की पवित्रता लिये इस संगीतज्ञ की जन्म शती के अवसर पर हम उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। उनका जन्म १६ जून १९२० को काशी नगरी (जो अब वाराणसी शहर है) में हुआ था। सितंबर माह की २६ तारीख, वर्ष १९८९ को यह आवाज़ मौन हो गयी। ऐसे कालजयी गायक बार-बार इस धरती पर नहीं आते।

उनकी आवाज़ में दर्द की अनोखी गूंज थी जो सुनने वाले के अंदर तक उतर कर उसे बेचैन कर देती थी। इसलिए जब भी बड़े से बड़े संगीतकार को कोमल भावनाओं वाला गहरा कोई गाना रचने की जरूरत पड़ी तो उसे गवाने के लिये हेमंत कुमार को ही चुनना पड़ा। नौशाद ने 'शबाब' फिल्म के लिए पुरुष स्वर में लोरी चन्दन का पालना, रेशम की डोरी, झूला झुलाऊं मैं निंदिया को तोरी (शकील बदायुनी) बनाई तो उन्हें उसे गवाने के लिये हेमंत कुमार के अलावा और कोई नहीं सूझा। इसी प्रकार जब शंकर जयकिशन के सामने शैलेंद्र के लिखे बोलों **ये अच्छा था ना हम कहते किसी से दास्तां अपनी/समझ पाये न जब अपने, पराये तो पराये थे...रुला**

कर चल दिये एक दिन हंसी बन कर जो आए थे (फिल्म: 'बादशाह'/ १९५४) को प्रस्तुत करने के लिये बेचैनी से भरी भरावदार आवाज की जरूरत पड़ी तो उन्होंने अपनी सामान्य धारा के बाहर जा कर यहां गाना गाने को हेमन्त कुमार को ही बुलाया। मशहूर अंतर्राष्ट्रीय फ़िल्मकार कोनार्ड रूक्स ने जब नोबल पुरस्कार विजेता हरमन हेस के गौतम बुद्ध पर आधारित उपन्यास 'सिद्धार्थ' पर फिल्म बनाई तो फिल्म की पृष्ठभूमि में हेमंत दा की आवाज़ में गूंजता गौरी प्रसन्न मजूमदार का लिखा बंगला गाना ओ नद्दी रे/ एक्थी कोथा शुधाई शुधु तो'मारे/ बोलो कोथाई तोमार देश/ तोमार नै'की छो'लार शेष/ ओ नद्दी रे नायक की जीवन के रहस्यों की खोज की तड़प को महसूस कराता है।

उनकी आवाज़ की गहराई को महसूस करने के लिये सुनिए सी. रामचंद्र का बनाया 'अनारकली' (१९५३) का गाना 'जाग दर्द-ए-इश्क जाग, दिल को बेक़रार कर' (राजेंद्र कृष्ण), वसंत देसाई का 'झनक झनक पायल बाजे' (१९५५) का नैन सौं नैन ना'ही मिलाओ, देखत सूरत आवत लाज (हसरत जायपुरी), रोशन का 'ममता' (१९६६) का छुपा लो यूं दिल में प्यार मेरा के जैसे मंदिर में लौ दिये की (मजरूह सुल्तानपुरी) और एस. डी. बर्मन का 'जाल' (१९५२) फिल्म का ये रात ये चांदनी फिर कहां सुन जा दिल की दास्तां (साहिर लुधियानवी) पीढ़ियों बाद भी ये गीत सुनने वालों में सिहरन जगा देंगे। हेमंत कुमार गायक ही नहीं निष्णात संगीतकार भी थे। अपनी पहली ही हिन्दी फिल्म 'आनंदमठ' (१९५२) में उन्होंने बंकिमचंद्र चटर्जी के गान वंदे मातरम को जिस धुन में रचा वह धुन अमर हो गई। महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि देता कवि प्रदीप के गीत दे दी हमें आज़ादी बिना खड़ग बिना ढाल/ साबरमती के संत तू'ने कर दिया कमाल ('जाग्रति'/१९५४) को खूबसूरत धुन पर आशा भोसले से गवाने वाले हेमंत कुमार ही थे। वे राग नहीं बल्कि सुर को पकड़ते थे और एक ऐसा रहस्यमयी वातावरण रच देते थे जो सुनने वाले को सब तरफ से घेर लेता था जैसे अलसुबह कोहरा। रवीन्द्र संगीत की छाया में उन्होंने अनेकों बांग्ला तथा हिन्दी गाने बनाए।

इस अनूठे गायक और संगीतकार ने सुरुचिपूर्ण बांग्ला और हिन्दी फिल्में भी बनाई जैसे 'नील आकाशेर नीचे' (१९५९) जिसने उस साल सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक जीता। हिन्दी फिल्मों में राहगीर और खामोशी जैसी फिल्मों को भी कैसे भुलाया जा सकता है। अपने जीवनकाल में उन्हें भरपूर शोहरत और मान-सम्मान मिला। उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार के अलावा बंगला देश का प्रतिष्ठित माइकल मधुसूदन पुरस्कार, गायकी के लिये दो बार राष्ट्रीय पुरस्कार, जैसे दर्जनों पुरस्कार मिले। विश्व भारती विश्वविद्यालय ने उन्हें डी' लिट् की मानद उपाधि देकर सम्मानित किया। मगर उन्होंने न जाने क्यों 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' अलंकरण स्वीकार नहीं किए।

संगीत कला की ऊंचाइयों को छूने वाला यह कलाकार परोपकारी भी था। अपने पिता की स्मृति में वे पश्चिम बंगाल के गांव बहरू में होम्योपैथी का एक अस्पताल चलाते थे। उनके निधन के बाद एक भेंट वार्ता में उनकी पत्नी ने बताया कि वे अनेकों जरूरतमंदों की चुपचाप नियमित मदद किया करते थे जिसका पता उनके निधन के बाद ही चला। ❑

'विराम' ६०/१७, रजत पथ,
मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०

कब ऐसा होगा
भारत में
जब हर बच्चे
को दूध मिलेगा

हर औरत
आजाद रहेगी
खुल कर अपनी
बात कहेगी

लोक नायक जयनारायण व्यास

लोक नायक जय नारायण व्यास के जीवन के विभिन्न पक्षों पर एक ग्रंथ का प्रकाशन किया गया है। ग्रंथ है लोक नायक जय नारायण व्यास : यह तेरा संसार नहीं। जयनारायण व्यास आधुनिक राजस्थान के मुख्यमंत्री थे। आपका जन्म जोधपुर में हुआ था। उस समय जोधपुर राजपुताना की प्रमुख रियासत मारवाड़ की राजधानी था। पुरातनपंथी ब्राह्मण परिवार में जन्मे जयनारायण व्यास की परवरिश धार्मिक वातावरण में हुई। उनकी शिक्षा-दीक्षा परम्परागत पोशाल तथा स्वजातीय विद्यालय में साधारण ढंग से हुई। लेकिन युवावस्था में आते आते वे पुरातन पंथी परम्परा के विद्रोही हो गये। उनके मन में एक नया समाज बनाने की संकल्पना थी। उन्होंने सामाजिक कुरितियों पर करारा प्रहार किया। समाज सुधारक के रूप में उन्होंने कई अभियान चलाए। अनेक लेख लिखे। लघु रचनाएं और कविताएं लिखीं। उनकी रचनाएं कई राष्ट्रीय स्तर के ख्याति प्राप्त समाचार पत्रों में प्रकाशित हुईं।

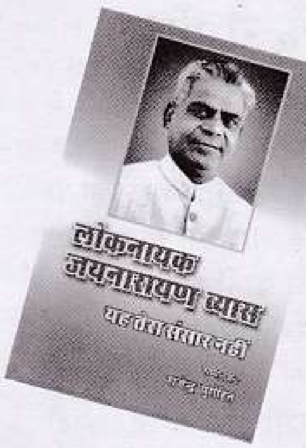
जयनारायण व्यास के जीवन का महत्वपूर्ण अध्याय है उनका राजनीतिज्ञ होना। उन्होंने एक राजनीतिक कार्यकर्ता, विचारक और जन नेता के रूप में अपनी पहचान बनाई। वे राष्ट्रीय आंदोलन, रियासती भारत के उत्थान और आधुनिक राजस्थान के निर्माण में जीवन पर्यन्त समर्पित रहे।

व्यास जी आधुनिक राजस्थान के सत्यनिष्ठ निर्भीक पत्रकार थे। और कवि भी थे। अनेक राष्ट्रीय पत्रों के संवाददाता रहे और अनेक पत्रों का संपादन एवं प्रकाशन किया। उनके द्वारा प्रकाशित पत्रों में तरुण राजस्थान, अखण्ड भारत, आगीवाण, लोक राज और पीप विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने लेखों, टिप्पणियों और संवादों के माध्यम से जन समस्याओं को प्रकाश में लाने और जन जागृति पैदा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

वे एक अच्छे कलाकार भी थे। नृत्य का उन्हें विशेष शौक था। किसी भी गंभीर वातावरण और गंभीर परिस्थिति में वे अपने पांवों में घुंघरू बांधकर नाचने लग जाते थे। उनका शिव तांडव नृत्य एवं बेगार नृत्य विशेष लोक प्रिय रहे। अपने नृत्य तथा गायन से कार्यकर्ताओं का मनोरंजन करते थे। उनका उत्साह बढ़ाते थे। उनके कला प्रेम का उल्लेख करते हुए सत्यदेव विद्यालंकार ने

डंकै री चौट

कहदौ आ डंकैरीचोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
अब म्हे सूता नहीं रहांला
गांव गांव आ बात कहांला
पैला काढ़ौ घर री खोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
जगा-जगा स्कूल खुलावौ
अरजी दौ आवाज उठावौ
मरद बणौ मत वाजौ फोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
सुणजौ रै कालेजी छोरा
अब थै थोड़ा हुईजो दौरा
लौ जुम्मैवारी री पोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
गरमी री छुट्टियां मैं जावौ
पढणौ लिखणौ उठै सिखावौ
कुछ दिन खावौ जाडा रोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
सुणौ जवानां म्हारी बात
परिसद रौ थै दीजौ साथ
आवौ मरदां बांध लंगोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
मारवाड़ न फरज सिखावौ
अरजी दौ आवाजा उठावौ
तकलीफां री करौ रपोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट
लोक हितैसी पंच चुणौ सब
परजा हित री बात सुणौ सब
सोच समझकर दीजौ वोट
मारवाड़ नहीं रहसी ठोट



लिखा है – मेरा व्यक्तिगत अनुभव यह है कि उन्हें नेता, राजनीतिज्ञ, युवा सार्वजनिक वक्ता की अपेक्षा अभिनेता, कलाकार अथवा नृत्यकार बनने में कुछ अधिक सुख का अनुभव होता था।

जयनारायण व्यास का ऐसा व्यक्तित्व था कि उसमें बहुत सारे गुण समाये हुए थे। राजस्थानी उनकी प्रिय भाषा रही। उन्होंने राजस्थानी में न केवल लेखन ही किया बल्कि वे इसकी मान्यता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने १९४४ में एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। इसमें उन्होंने राजस्थानी के संबंध में उठाये गये प्रत्येक प्रश्न का गहराई से जवाब दिया है। इसमें राजस्थानी लिपि, विशेषताओं, विभिन्न बोलियों आदि से संबंधित मुद्दों का विस्तृत विवेचन किया है।

हाल ही में प्रकाशित ग्रंथ का संपादन राजेन्द्र पुरोहित ने किया है। इसमें जयनारायण व्यास के पूरे जीवन पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न अधिकारी विद्वानों, द्वारा लिखे गये लेख और संस्मरण इसमें संकलित किये गये हैं। इसमें जर्नादन राय नागर, मघराज कल्ला, जसवंत राज मेहता, पं. न्याय शर्मा, राजबहादुर, सत्यदेव विद्यालंकार, विश्वनाथ वामन काल, सतीश चंद पुरोहित, आनंदराज सुराणा, रामचन्द्र बोड़ा, शीन काफ निजाम, जहूर खां मेहर, भागीरथ रंगा आदि हैं।

बहुत सुंदर छपाई और आवरण के साथ कुल ६१५ पृष्ठों के इस ग्रंथ में संपादक ने व्यास जी के पूरे जीवन को समेटने का प्रयास किया है जो स्तुत्य है। मेरा मानना है कि उस महापुरुष के बारे में जितना लिखा जाये कम ही है।
लोक नायक जयनारायण व्यास का सम्पूर्ण जीवन उस कर्मठ राष्ट्र महापुरुष का जीवन था, जिसके शब्द कोष में थकान, निराशा और पराजय जैसे शब्द नहीं थे। उन्होंने जिस किसी क्षेत्र में पांव रखा उसमें उनके कदम हमेशा बढ़ते गये। कभी रुके नहीं, कभी थके नहीं, कभी लड़खड़ाए नहीं, और कभी हारे नहीं। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अबाध गति से निरंतर आगे ही बढ़ते चले गये। उन्होंने निर्दिष्ट, मंजिल पर पहुंच कर ही सांस ली और तुरंत आगली मंजिल की ओर गये।

इसी कारण लोक नायक शब्द उनको पा कर धन्य हो गया। एक दूसरा विशेषण भी उनके नाम के आगे लगा वह था–शेरे राजस्थान। ❑

– दिनेश पुरोहित

सुण

धान घणौ उपजावै कुण
पेट नहीं भर पावै कुण
हाथां वस्त्र बणावै कुण
फिर नागी रह जावै कुण
सब नै सुख पहुचावै कुण
उण करसी री बातां सुण
हुकम दे चुकी है सरकार
इण सूं मत लीजौ बेगार
फिर भी मुफ्त लाद दै भार
अहलकार वौ जागिरदार
अफसर अठी उठी जद जावै
मीटा मीटा भत्ता पावै
खूब समान साथ ले जावै
नहीं जबान हिलावै कुण
उण करसी री बातां सुण

करै ठिकाणा मैं जौ बास
खोद खोद नित लावै घास
जौ ना दैवै वौ बदमास
उण रौ हौवै सत्यानास
इण सूं चुप रह जावै कुण
उण करसी री बातां सुण

इण री बात सुणावै कुण
ध्यान राज रै लावै कुण
नित रौ दुख मिटावै कुण
औं नहीं समजै म्हे हूं कुण
उण करसी री बातां सुण

सीखना बरस दर बरस

सीखना निरंतर चल रहा है। बरस दर बरस। लगभग आधी सदी बीत गई है जब से सचेतन और सायाश लर्निंग शुरू हुआ है। मान लेते हैं उससे पहले का समय तो विद्यार्थी काल था और तब किसी तंत्र की परोसी हुई पोथी को पढ़कर परीक्षा के लिए सीख रहे थे। मैं उसे सीखना तब भी नहीं मानता था और आज भी नहीं मानता हूं। आरोपित शिक्षण में सीखना नहीं होता है। वहां उन चीजों का परिचय होता है जिन पर फिर कोई तीसरा आदमी कभी सवाल करने वाला होता है या कर बैठता है। यह तीसरा आदमी कक्षा में पढ़ाने वाले अध्यापक से अलग ही होता है और कभी-कभी छद्म रूप से अध्यापक भी होता है। परीक्षा के पूर्ण होते ही कक्षा का वह साथ छूट जाता है और जो कुछ सीखा या जाना वह विस्मृति के गर्त में जाना शुरू हो जाता है।

शिक्षा के पूर्ण होने के बाद असल जीवन में प्रवेश करते ही सीखना शुरू हो जाता है। पुरानी कहावत है कि 'लूण, तेल, लकड़ी के भाव याद आने लगते हैं'। बाजार सामने होता है, समाज सामने होता है और अपने ही परिवार के योग:क्षेम की चिंता सामने खड़ी होती है। चिंता में चुनौती होती है और चुनौती को स्वीकार करने में सीखना शुरू होता है। सीखने की इस प्रक्रिया में खरापन होता है। इस प्रक्रिया में एक चाहत और प्रबल होती है कि हम अपने आध्यात्मिक और भौतिक विकास के लिए कोई सुचिंतित साधन जुटायें। इस कोशिश में जीवन साधना बनने लगता है। यह साधना अपने को साध लेने की होती है। लोगों के साथ रिश्ते बनाने की होती है और अपनी फटी चादर को रफू कर लेने और ओढ़ने की होती है। यह एक सार्वजनीन सच है। मेरे साथ भी यही बीता है। औरों के साथ भी ऐसा ही होता है।

आपबीती कहने का आनंद ही अलग है। मेरे इस आनंद की शुरूआत दर्शन पढ़ते-पढ़ते अचानक साहित्यिक संपादन को सीखने से हो गई थी। मैं दर्शन पढ़ता हुआ भारतीय ज्ञानपीठ में जा पहुंचा था। वहां भाई लक्ष्मीचंद्र जैन, श्रीयुत्त जगदीश एम.ए. और डॉ. गोकुलचंद्र जैन का साथ मिला था। शीघ्र ही पंडित गोपीलाल अमर और पंडित बलभद्र जैन का सत्संग भी मिल गया था।

रोजगार के बीच यहां एक नया विश्वविद्यालय शुरू हो गया था। मैं प्रतिदिन शिक्षित होता था। आनंदित होता था और अभिभूत भी। कभी विस्मित भी और कभी दुखित भी। क्या अनुभव था? कैसे-कैसे विलक्षण लोग थे? कितना मिठास था– वाणी में, व्यवहार में? सब



जीने पै कुछ ही लोगों को है
अख्तियार क्यों?
कब्जे में चंद लोगों के
आखिर बहार क्यों?
जब धूप, हवा, चांदनी
सब ही के लिए हैं।
बैठे हैं अपनी जिंदगी पै
पहरेदार क्यों?

इस जिंदगी से कुछ तो
मुहब्बत हमें भी है।
फूलों की, चांदनी की,
जरूरत हमें भी है।

– कश्मीरी लाल जाकिर

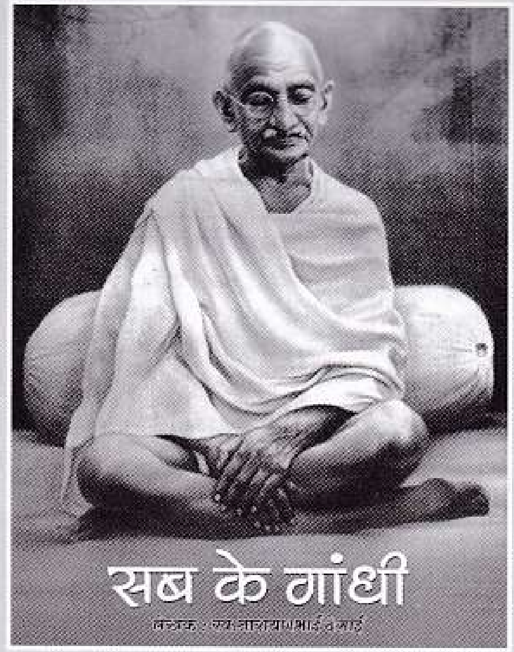
सपना सा लगता है आज। आज के बदले हुए कॉरपोरेट व्यवसाय वाले लोग ऐसे किसी विश्वविद्यालयी दफ्तर की बात भी नहीं सोच सकते। इसी दफ्तर में मुझे भाई श्री उमाशंकर जोशी का साथ मिला। जो गुजरात विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे और राज्यसभा के सदस्य भी। यहीं इसी दफ्तर में भाई निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा जैसे कई अनन्य स्नेही मित्रों का साथ भी मिला। वहां जो कुछ सीखा उसको बयां करने के लिए तो कई हजार पृष्ठ लिखने होंगे। श्री फिराक गोरखपुरी, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी और सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय जैसे कई मनीषियों का संस्पर्श भी मिला। आत्मीयता मिली। प्रगाढ़ता हुई और एक अकिंचन कार्यकर्ता की सीखने की मगर यात्रा चलती रही। कुछ पीछे भी छूट गया यह मैं चलता रहा।

अचानक कुछ ऐसा हुआ कि मैं भाई श्री निर्मल वर्मा की कृपा से **प्रतिपक्ष** नाम के साप्ताहिक से जुड़ गया था। इसके प्रधान संपादक **जार्ज फर्नान्डिस** थे। संपादक कमलेशजी और भाई गिरधर राठी, मंगलेश डबराल और मैं स्वयं तीनों कमलेशजी के साथ थे। यह राजनैतिक साप्ताहिक था। राजनैतिक असहमति के अधिकार का साप्ताहिक। यहां हमने हिन्दी गद्य में प्रतिपक्ष की भाषा का एक नया मुहावरा रचने की कोशिश की थी। हिन्दी गद्य में यह अपनी तरह की एक नई शुरूआत थी। ऐसा गद्य जिस पार आज हम फक्र कर सकते है। क्योंकि आज की राजनीति में भाषा बहुत भ्रष्ट हो गई है। उसका दिवाला निकल गया है। मगर मैं यह याद कर रहा हूं कि हमारे लिए अपनी असहमति को व्यक्त करने के लिए और प्रतिपक्ष को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा लिखना एक चुनौती थी। यहां रहते हुए **जार्ज फर्नान्डिस** से प्रगाढ़ता बढ़ी। उनका स्नेह मिला। साथ में **लैला कबिर फर्नान्डिस** का भी। लैला जी हुमायु कबिर की बेटी हैं। यहीं पर भाई मधु लिमये, भाई सुरेन्द्र मोहन, मधु दंडवते आदि से भी अक्सर मिलना और साथ बैठना हुआ। यह मेरी राजनैतिक पाठशाला थी। मृणाल गौरे जैसी प्रखर एवं तेजस्वी राजनैतिक कार्यकर्ता से भी मैत्री बढ़ी और उनके आंदोलन से बहुत कुछ सीखता रहा। मुंबई में मृणाल ताई द्वारा निकाला हुआ लाटनी मोर्चा इतिहास बन गया है। मृणाल के साथ मेरा एक लंबा साक्षात्कार आज भी मेरे स्मृति संसार में जलती हुई मशाल की तरह खड़ा है। इन नेताओं की जन-वत्सलता और इनका लोकानुराग देखकर मैं तब तो चकित था मगर आज इस दृश्य को देखकर ठिठका खड़ा हूं। कभी कल्पना में भी नहीं था मेरी कि चालीस बरसों में भारतीय नेतृत्व का इस कदर पतन हो जायेगा। लोग इतने बौने और ओछे हो जायेंगे। यह मैंने किसी शास्त्र में भी नहीं पढ़ा था कि वक्त के साथ आदमी इतना ओछा हो सकता है। अपने ही अनुभवों को मैं खोजता रहता हूं। सोचता हूं कि वे लोग नहीं मिले होते तो ये लोग शायद अच्छे लग जाते। ❑ **–रमेश थानवी**

भूल सुधार

पिछले अंक में (जुलाई-अगस्त, २०२०) पिछले पन्ने पर एक शिक्षक की डायरी से ली हुई नाज़िम हिकमत की कविता 'लिटिल गर्ल' का हिन्दी अनुवाद छपा था। हिरोशिमा दिवस के अवसर पर एक शिक्षाविद् की डायरी से ली गई थी यह कविता। मगर यह उल्लेख नहीं किया गया था कि वह शिक्षाविद् कौन है? और उनकी डायरी की पुस्तक का नाम क्या है? ऐसा भूल से हुआ। थोड़ा जल्दबाजी के कारण। पाठकों की सूचना के लिए उल्लेख है कि श्री शिवरतन थानवी जो शिवरा पत्रिका और नया शिक्षक के संपादक रहे उनकी डायरी **जग दर्शन का मेला** नाम से प्रकाशित हुई है। पुस्तक का फोटो नीचे दिया जा रहा है। ❑ सं.







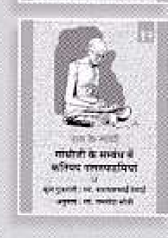


सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004



सब के गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये ५००/– मात्र   डाक खर्च अलग से देय होगा।

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा
७–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर–३०२००४ से प्रकाशित। संपादक – रमेश थानवी



लिखी जयपुर से जयपुर अतरोली घराने के संगीत सम्राट परम श्रद्धेय पंडित जसराज को नमन

आज भी गा रहे हैं पंडित जसराज गाते रहेंगे

भाई श्री मुकुन्द लाठ के जाने के बाद पंडित जसराज जी ने भी अपना शरीर छोड़ दिया। गुरु–चेला दोनों साथ–साथ गये। यह कोई विडम्बना तो नहीं मगर विधि का विधान अवश्य है। जसराज के जाने को न जाना कह सकते है और न मुकुन्द भाई के जाने को जाना कहेंगे। पंडित जसराज आज उन्हीं सुरों में मुग्ध होकर गाते हुए कभी भी सुने जा सकते हैं। जयपुर से उनका नाम जुड़ा था। मुकुन्द भाई का घर तो खैर उनका ही घर था। उठना–बैठना, गाना, गवाना सब चलता रहता था। पंडितजी की संगीत साधना में जो व्यापक विस्तार था उसका कोई मुकाबला नहीं है। पंडितजी को जितना सम्मान देश ने दिया उतना ही दुनिया ने। हर शहर में उनके रसिक रहते हैं और अजब संयोग है कि उनका देहावसान भी पराई धरती पर हुआ। देशवासी दूर से ही अलविदा कहते रहे। सं. ❑

